

खण्ड 2

इकाई 1

विद्यालयी विषयी ज्ञान का संगठन : अध्ययन अभिविन्यास

(Knowledge Organization in school subjects : Disciplinary Orientation)

प्रस्तावना –

(1) “ज्ञान लोगों के भौतिक तथा बौद्धिक सामाजिक क्रियाकलाप की उपज, संकेतों के रूप में जगत के वस्तुस्थिति गुणों और संबंधों, प्राकृतिक और मानवयी तत्वों के बारे में विचारों की अभिव्यक्ति है।” ज्ञान दैनंदिन तथा वैज्ञानिक हो सकता है। वैज्ञानिक ज्ञान आनुभविक और सैद्धांतिक वर्गों में विभक्त होता है। इसके अलावा समाज में ज्ञान की मिथकीय, कलात्मक, धार्मिक, शैक्षणिक तथा अन्य कई अनुभूतियाँ होती हैं। सिद्धांततः सामाजिक-ऐतिहासिक अवस्थाओं पर मनुष्य के क्रियाकलाप की निर्भरता को प्रकट किये बिना ज्ञान के सार को नहीं समझा जा सकता है। ज्ञान में मनुष्य की सामाजिक शक्ति संचित होती है। यह तथ्य मनुष्य के बौद्धिक कार्यकलाप की प्रमुखता और आत्मनिर्भर स्वरूप के बारे में आत्मगत-प्रत्ययवादी सिद्धांतों का आधार है।

(2) स्वप्रसारित ज्ञान-केन्द्र प्रसारित ज्ञान –

स्वप्रसारित ज्ञान-अनादि सत्ता है और केन्द्र प्रसारित ज्ञान मस्तिष्क से प्रसारित होने वाला ज्ञान है। केन्द्र प्रसारित ज्ञान मृत्यु के साथ बीज रूप में स्वप्रसारित ज्ञान में लीन हो जाता है, पुनः सुसुप्ति से स्वप्न और जाग्रत अवस्था की तरह जन्म लेता है। स्व प्रसारित ज्ञान सर्वत्र है। केन्द्र प्रसारित ज्ञान देह बद्ध है। केन्द्र प्रसारित ज्ञान के कारण अहंकार की सत्ता है। स्व प्रसारित ज्ञान परमात्मतत्त्व है। जिस प्रकार केन्द्र प्रसारित ज्ञान देह का भासित ईश्वर है उसी प्रकार स्व प्रसारित ज्ञान सृष्टि का ईश्वर है। स्व प्रसारित ज्ञान का जब एक अंश उपरा (जड़) प्रकृति को स्वीकार कर लेता है तो केन्द्र प्रसारित ज्ञान का उदय होता है और वह प्रजापति होकर शरीर का कारण दिखाई देता है। स्वप्रसारित ज्ञान साक्षी रूप में देह में भासित होता है केन्द्र प्रसारित ज्ञानकर्ता, भोक्ता के रूप में दिखाई देता है। जब तक स्मृति है तब तक देहस्थ में का बोध है और जब स्मृति निरति में विलीन हो जाती है तब स्वरूप स्थिति का बोध होता है और जब स्मृति निरति में विलीन हो जाती है तब स्वरूप स्थिति का बोध होता है जो यथार्थ में है। यह ही ब्रह्म बोध है यहाँ वह जानता है ‘अहम् ब्रह्मास्मि’-बसंत प्रभाव जाशी के मतानुसार ज्ञानमीमांसा दर्शन की एक शाखा है। ज्ञानमीमांसा ने आधुनिक काल में विचारकों का ध्यान आकृष्ट किया। दर्शनशास्त्र का ध्येय सत् के स्वरूप को समझना है। सदियों से विचारक यह खोज करते रहे हैं, परंतु किसी निश्चित निष्कर्ष से अब भी उतने ही दूर प्रतीत होते हैं, जितना पहले थे।

(3) आधुनिक काल में देकार्त (1596–1650 ई) को ध्यान आया कि प्रयत्न की असफलता का कारण यह है कि दार्शनिक कुछ अग्रिम कल्पाओं को लेकर चलते रहे हैं। दर्शनशास्त्र को गणित की निश्चितता तभी प्राप्त हो सकती है, जब यह किसी धारणा को, जो स्वतः सिद्ध नहीं न हो, को प्रमाणित किए बिना न मानें। उसने व्यापक संदेह से आरंभ किया। उसकी अपना चेतना में उसे ऐसी वस्तु दिखाई दी, जिसके अस्तित्व में उसे संदेह ही नहीं हो सकता था। संदेह तो अपने आप में चेतना का एक आकार या स्वरूप है। इस नींव पर उसने, अपने विचार में, परमात्मा और सृष्टि के अस्तित्व को सिद्ध किया था।

जॉ लॉक (1632–1704 ई) ने अपने लिये नया मार्ग चुना। सदियों से सत् के विषय में विवाद होता रहा था। पहले तो यह यह जाना आवश्यक है कि हमारे ज्ञान की पहुँच कहाँ तक है। इसी से ये प्रश्न भी जुड़े थे कि ज्ञान क्या है और कैसे प्राप्त होता है। यूरोप महाद्वीप के दार्शनिकों ने दर्शन को गणित का प्रतिरूप देना चाहा था, लॉक ने अपना ध्यान मनोविज्ञान की ओर फेरा मानव बुद्धि पर निबंध की रचना की। यह युगांतकारी पुस्तक सिद्ध हुई, जिसे अनुभववाद का मूलाधार समझा जाता है।

जार्ज बर्कले (1684–1753) ने लॉक की आलोचना में मानविज्ञान के नियम लिखकर अनुभववाद को आगे बढ़ाया और डेविड ह्यूम (1111–1116 ईदृ) ने मानव प्रकृति में इसे चरम सीमा तक पहुँचा दिया। ह्यूम के विचारों का विशेष महत्व यह है कि उन्होंने कांट (1724–1804 ईदृ) के आलोचनवाद के लिये मार्ग खोल दिया। कांट ने ज्ञानमीमांसा को दर्शनशास्त्र का केन्द्रीय प्रश्न बना दिया। किन्तु पश्चिम में ज्ञानमीमांसा को उचित पद प्राप्त करने में बड़ी देरी लगी। जबकि भारत में कभी इसकी उपेक्षा हुई ही नहीं।

ज्ञान, ज्ञात और ज्ञेय का संबंध है। देकार्त ने ज्ञान को अपने अनुभव के विश्लेषण से आरंभ किया, परंतु मनुष्य सामाजिक प्राणी है, उसका अनुभव शून्य में विकसित नहीं हो सकता। दर्शनशास्त्र का इतिहास वाद विवाद की कथा है। प्लेटों ने अपना मत संवादों में व्यक्त किया था। संवाद में एक से अधिक चेतनाओं का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। ज्ञानमीमांसा में विवेचन का विषय वैयक्तिक चेतना नहीं, अपितु सामाजिक चेतना बन जाती है। ज्ञान का अपना अस्तित्व तो असंदिग्ध है परंतु इसमें म्निलिखित स्वीकृतियाँ भी निहित होती हैं – (क) ज्ञान से भिन्न ज्ञाता है, जिसे ज्ञान होता है। (ख) ज्ञान एक से अधिक ज्ञाताओं के संसर्ग का फल है। (ग) ज्ञान का विषय ज्ञान से भिन्न है। प्रत्येक धारणा सत्य होने का दावा करती है। परंतु मीमांसा इस दावे को उचित जाँच के बिना स्वीकार नहीं कर सकता।

हम अभी धारणाओं की परीक्षा करेंगे, परंतु पहले ज्ञान के स्वरूप पर कुछ कहना आवश्यक है। ज्ञान का स्वरूप : सम्मति, विश्वास और ज्ञान जब हम किसी धारणा को सुनते हैं या उसका चिंतन करते हैं तो उस संबंध में हमारी वृत्ति इस प्रकार की होती है – हम उसे सत्य स्वीकार करते हैं या उसे असत्य समझकर अस्वीकार करते हैं। सत्य और असत्य में निश्चय न कर सकें, तो स्वीकृति अस्वीकृति दोनों को विराम में रखते हैं। यह संदेह की वृत्ति

है। उपन्यास पढ़ते हुए हम अपने आपको कल्पना के जगत् में पाते हैं और जो कुछ कहा जाता है उसे हम उस समय के लिये तथ्य मान लेते हैं। यह काल्पनिक स्वीकृति है। स्वीकृति के कई स्तर होते हैं। अधम स्तर पर सामयिक स्वीकृति है, इसे सम्मति कहते हैं। यह स्वीकृति प्रमाणित नहीं होती, इसे त्यागना पड़े तो हमें कोई विरक्ति नहीं होती। सम्मति के साथज्ञ तेज और सजीवता प्रबल होती है। धार्मिक विश्वासों पर जमें रहने के लिये मनुष्य हर प्रकार का कष्ट सहन कर लेते हैं। विश्वास और सम्मति दोनों वैयक्तिक कृतियाँ हैं, ज्ञान में यह परिसीमन नहीं होता। ये तो ऐसे तथ्य हैं जिन्हें प्रत्येक बुद्धिवंत प्राणी को अवश्य मानना होता है। संमतियों में भेद होता है। ज्ञान सबके लिये एक है। ज्ञान में संमति की आत्मपरकता का स्थान वस्तुपरकता ले लेती है।

अनुभववाद के अनुसार, ज्ञानसामग्री के दो ही भाग हैं — प्रभाव और उनके बिंब। द्रव्य के लिये इसमें कोई ज्ञान नहीं। ह्यूम ने कहा कि जिस तरह भौतिक पदार्थ गुणसमूह के अतिरिक्त कुछ नहीं, उसी तरह अनुभवी अनुभवों के समूह के अतिरिक्त कुछ नहीं। इस दोनों समूहों में एक भेद है — कुछ के सभरी गुण एक साथ विद्यमान होते हैं, चेतन की चेतनावस्थाएँ एक दूसरे के बाद प्रकट होती हैं। चेतना श्रेणी या पंक्ति हैं और किसी पंक्ति को अपने आप पंक्ति होने का बोध नहीं हो सकता। हृदय की व्याख्या में स्मरण शक्ति के लिये कोई स्थान नहीं, जैसे विलियम जेम्स ने कहा, अनुभववाद का स्मृति, माँगनी पड़ती है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, हमारा सारा जीवन और मनुष्यों के साथ व्यतीत होता है। पुरुषबहुत्व व्यापक स्वीकृति है। मीमांसा के लिये प्रश्न यह है कि इस स्वीकृति की स्थिति दृढ़ विश्वास की स्थिति है या ज्ञान की। मनुष्य के साथ संसर्ग भी होता प्रतीत होता है। अहंवाद के अनुसार सारी सत्ता भारी कल्पना ही है। हमारा सामाजिक जीवन अहंवाद का खंडन है, परंतु प्रश्न तो सामाजिक जीवन के संबंध में ही है — क्या यह जीवन विश्वास मात्र ही तो नहीं ? अहंवाद के विरुद्ध कोई ऐसा प्रमाण नहीं जिसे अखंडनीय कह सकें। जब हम ऐसे संदेह से ग्रस्त होते हैं, तो थोड़े समय के बाद हम अपने आपको थका पाते हैं और हमारा ध्यान विवश होकर दुनिया की ओर फिरता है, जिसमें भौतिक पदार्थ भी है और चेतन प्राणी भी। जब बुद्धि काम नहीं करती, तब प्रकृति हमारी सहायता करती है। अनुभववाद के अनुसार सारा ज्ञान अंत में प्रभावों और उनके चित्रों से बनता है। प्रभाव में गुणबोध और वस्तुवाद का भेदकर सकते हैं, चित्र में प्रतिबिंब और प्रत्यय का भेद होता है। प्रत्येक ज्ञानेंद्रिय किसी विशेष गुण का परिचय देती है — आँख रूप का, कान शब्द का, नास शब्द का, नास गंध का। इन गुणों के समन्वय से वस्तुज्ञान प्राप्त होता है। इसे प्रतिबोध या प्रत्यक्ष भी कहते हैं। ऐसे बोध में ज्ञान का विषय ज्ञाता के बाहर होता है, प्रतिबिंब और प्रत्यय अंदर होते हैं। यह बाहर और अंदर का भेद कल्पना मात्र है या तथ्य है, ज्ञानमीमांसा में यह प्रमुख प्रश्न रहा है। प्रतिबोध या प्रत्यक्ष ज्ञान ने जितना ध्यान आकर्षित किया है, उतना ज्ञानमीमांसा में किसी अन्य प्रश्न ने नहीं किया।

विद्यालय विषयी ज्ञान का अध्ययन क्षेत्र —

शिक्षा में ज्ञान, उचित आचरण और तकनीकी दक्षता, शिक्षण और विद्या प्राप्ति आदि समाविष्ट हैं। इस प्रकार यह कौशलों व्यापारों एवं मानसिक, नैतिक और सौन्दर्य विषयक के उत्कर्ष पर केंद्रित है। औपचारिक शिक्षा में व्यवसायिक शिक्षकों द्वारा नियमशील अनुदेश शिक्षण और प्रशिक्षण इन में शामिल हैं। अध्यापन और पाठ्यक्रम के विकास का विनियोग एक उदार शिक्षा परंपरा में, शिक्षक अपन पाठ के लिए मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, सूचना प्रौद्योगिकी, भाषा विज्ञान, जीवन विज्ञान और समाजशास्त्र सहित अलग-अलग विषयों से प्रेरणा लेते हैं। व्यवसायों के विशेषीकृत शिक्षक जैसे खगोल, भौतिकी, कानून या प्राणीशास्त्र, चिकित्सा अभियांत्रिकी, समाजशास्त्र इत्यादि एक सीमित क्षेत्र में ही, विशेषकर उनमें भी वर्गीकृत रूप से सिखाए जाते हैं। उच्च शिक्षा संस्थानों में अब विषयों को अतिसूक्ष्म रूप में विषय विशेष में योग्यता, प्रशिक्षण तथा रोजगार उन्मुखी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है तथा शिक्षा का ध्येय ऐसा शिक्षार्थी तैयार करना होता है, जो विषय विशेष तकनीक में दक्षता हासिल कर सके। वे आत्मनिर्भर हो सके तथा समाज को एक नई दिशा, बोध, ज्ञान तथा तकनीक प्रदान करने में सक्षम बने।

ज्ञान बोध और शिक्षा के परिणाम लायक समझ को परिभाषित करता है। अध्यापन का पेशा, सीख प्रदान करता है जो विद्या प्राप्ति और नीतियों की एक प्रणाली, नियमों, परीक्षाओं, संरचनाओं और वित्तपोषण को सक्षम बनाता है। कभी-कभी शिक्षा प्रणाली सिद्धांतों का आदर्श एवं ज्ञान को बढ़ावा देने के लिए प्रयोग की जाती है जिसे सामाजिक अभियंत्रिका कहा जाता है। शिक्षा एक व्यापक अवधारणा है, जो छात्रों में कुछ सीख सकने के सभी अनुभवों का हवाला देते हुए अनुदेश अथवा अन्य रूपों द्वारा वितरित शिक्षण को कहते हैं जो अभिज्ञात लक्ष्य की विद्या प्राप्ति को जानबूझकर कर सरल बनने को लिए हो। शिक्षण एक असल उपदेशक की क्रियाओं को कहते हैं जो शिक्षण को सुझाने के लिए आकल्पित किया गया हो। प्रशिक्षण विशिष्ट ज्ञान, कौशल, या क्षमताओं की सीख के साथ शिक्षार्थियों के तैयार करने की दृष्टि से संदर्भित है, जो कि तुरंत पूरा करने पर लागू किया जा सकता है।

विद्यालयी विषय – अध्ययन क्षेत्र के रूप में ये प्रमुखतः चार भागों में बांटे जा सकते हैं।

1. **विज्ञान संकाय** : इसमें प्रमुख रूप से रसायन शास्त्र, भौतिकी, जीवन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, गणित विषय सम्मिलित होते हैं। विद्यालय के पश्चात इन्हीं विषयों में विशिष्टता भी सम्मिलित होती जाती है तथा इसकी शाखाओं में विस्तार होता है। उदाहरणार्थ – भौतिकी में, रेडियोलाजी, माइक्रोवेव, अटामिक एनर्जी इत्यादि विषयों का कार्यक्षेत्र अपने-अपने विभागों में बटता जाता है।

2. **कला संकाय** : इसमें सामाजिक विज्ञान से सम्बन्धी विषय-यथा-समाजशास्त्र, नागरिक शास्त्र, भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र इत्यादि सम्मिलित होते हैं। इस संकाय की शाखा भी उच्चतर कक्षाओं में वृहत्त होती जाती है तथा वे विषय विशेष में दक्षता हासिल करती जाती है। उदाहरणार्थ-समाजशास्त्र में समाज से सम्बन्धी विषयों यथा राजनीतिक समाजशास्त्र,

अपराध शास्त्र इत्यादि में विद्यार्थी दक्षता प्राप्त करते हैं। यह विषय उस वक्त संकाय का रूप ग्रहण कर लेता है।

3. **वाणिज्य संकाय** — इस संकाय में व्यापार व अर्थ से सम्बन्धित विषय रहते हैं, यथा—व्यापार प्रबन्धन, लेखा शास्त्र, आर्थिक प्रशासन इत्यादि विषय रहते हैं। उत्तरोत्तर इस विषय की भी शाखाएं बढ़ जाती हैं तथा यह विषय एक संकाय का रूप धारण कर लेते हैं।

4. **भाषा संकाय** — इस संकाय में विभिन्न भाषाओं यथा हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत उर्दू तथा क्षेत्रीय व विदेशी भाषाएँ सम्मिलित रहती हैं।

वैचारिक संगठन के सिद्धान्त और नियम

(Conceptual Organization in the form of Principal and Laws)

जोन्स तथा क्रो एवं क्रो द्वारा बताये गये परामर्श के सिद्धान्तों के साथ-साथ कुछ अन्य अतिरिक्त सिद्धान्त भी हैं, जिन पर सभी विद्वान सहमत हैं। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं —

परामर्श सभी के लिये (**Counselling for all**) — परामर्श कार्यक्रम का सबसे प्रमुख सिद्धान्त यह है कि परामर्श किसी एक या विशिष्ट प्रकार के व्यक्ति के लिये न होकर सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिये होता है या होना चाहिए क्योंकि जीवन के हर चरण पर हर व्यक्ति को परामर्श की आवश्यकता रहती है। व्यावहारिक रूप से यही गलत धारणा व्यक्तियों में घर कर चुकी है कि परामर्श सेवा केवल उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित करनी पड़ती है, जो पढ़ाई छोड़ देते हैं या असफल रहते हैं। लेकिन इस सिद्धान्त के अनुसार परामर्श प्राप्त करने की सुविधा अधिक से अधिक व्यक्तियों तक पहुँचनी चाहिए। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को यह महसूस कराना भी आवश्यक है कि उनके लिये परामर्श सेवा की पर्याप्त व्यवस्था है।

परामर्श जीवन भर चले वाली प्रक्रिया है (**Counselling is a life-long process**) — परामर्श प्रक्रिया जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है क्योंकि परामर्श जीवन के हर पग पर चाहिए। हर पग पर व्यक्ति को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं के समाधान के बिना व्यक्ति आगे कदम नहीं बढ़ा सकता। इसी प्रकार परामर्श किसी आयु-विशेष के लिये नहीं होना चाहिए। यह सभी आयु के लोगों के लिये होता है। जीवन में समस्याओं का होना तथा उनके समाधान के लिये प्रयत्न करना स्वाभाविक है। अतः परामर्श की आवश्यकता सदा बनी रहती है।

व्यक्ति की प्रतिष्ठा को स्वीकृत करना (**Acceptance of the worth of the individual**) — समाज व्यक्तियों से ही बनता है। यदि समाज को शक्तिशाली न बनाया जाये तो वह समाज पिछड़ जायेगा। अतः समाज को सच बनाने के लिये समाज के प्रत्येक सदस्य की प्रतिष्ठा को स्वीकार करना बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रत्येक व्यक्ति के अस्तित्व को एक समान महत्व दिया जाना चाहिए। ऐसा करने के लिये यह आवश्यक है कि समाज के प्रत्येक सदस्य को समान

अवसर उपलब्ध कराये जायें, ताकि उनके व्यक्तित्व का विकास हो सके। परामर्श का लक्ष्य ही यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी शक्तियों तथा क्षमताओं के अनुरूप अधिकतम विकास की ओर ले जाना होता है। अतः शिक्षा, व्यवसाय परिवार आदि विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्ति की योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुरूप अवसर प्रदान करने पर बल देकर हम व्यक्ति की प्रतिष्ठा को स्वीकार करते हैं।

परामर्श आँकड़ों के वस्तुनिष्ठ—विश्लेषण पर आधारित हो (**Counselling should be based on ther objective analysis of datas**) – परामर्श कार्य में आँकड़े एकत्रित किये जाते हैं। यह आँकड़े जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित होते हैं। इन आँकड़ों का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करके ही परामर्श तक पहुँचा जा सकता है। किसी भी समस्या समाधान के लिये आँकड़ों का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण अति आवश्यक होता है। इसके बिना किसी भी परिणाम पर नहीं पहुँचा जा सकता। इसके अभाव में पूर्ण परामर्श प्रक्रिया निरर्थक सी महसूस होगी। अतः यह आवश्यक है कि परामर्श प्रदान करने वाले व्यक्ति के पास परामर्श प्राप्त करने वाले व्यक्ति से संबंधित आँकड़े उपलब्ध हों, ताकि वह इनका उचित प्रकार से विश्लेषण करके किसी परिणाम पर पहुँच सके।

व्यक्ति विभिन्नताओं को महत्त्व देना (**Importance should be given to individual difference**) – यह तथ्य अब सर्वमान्य है कि अभी व्यक्ति एक समान नहीं होते, बल्कि यमजों (**Twins**) – में भी कई प्रकार की विभिन्नताएँ दिखाई देती हैं। व्यक्तियों के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को आज हम विभिन्न परीक्षणों द्वारा नाप सकते हैं या अनुमान लगा सकते हैं। परामर्श कार्यक्रम में इस प्रकार की विभिन्नताओं को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता और न ही ऐसा करना चाहिए। इन विभिन्नताओं के लिये विभिन्न कारण (**Factors**) उत्तरदायी होते हैं तथा इन विभिन्नताओं के व्यक्ति के व्यक्तित्व पर विभिन्न प्रभाव देखने को मिलते हैं। इस दृष्टि से यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति की समस्याओं के समाधान के लिये परामर्श कार्य शुरू करने से पहले व्यक्तियों की विभिन्नताओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाना चाहिए।